19. सेव और देव

स०ही०वा०अज्ञेय

लेखक परिचय–

आधुनिक हिन्दी साहित्य के बहुआयामी तथा विलक्षण व्यक्तित्व के धनी अज्ञेय (उपनाम) का पूरा नाम सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय है। अज्ञेय का जन्म सन् 1911 में कसिया जिला देवरिया (उ.प्र.) में हुआ। इनके पिता हीरानंद शास्त्री पुरातत्त्ववेत्ता थे। इनका बचपन लखनऊ, कश्मीर, बिहार और मद्रास में व्यतीत हुआ। शिक्षा मद्रास और लाहौर में हुई। बी.एस.सी. करने के बाद एम.ए. (अंग्रेजी) के पढ़ाई की तथा संस्कृत और हिंदी का गहन अध्ययन किया। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान वे क्रांतिकारी के रूप में जेल भी गए। अज्ञेय 'सैनिक', 'प्रतीक', 'नया प्रतीक', 'बिजली', 'विशाल भारत', वाक् (अंग्रेजी त्रैमासिक) और 'दिनमान' के सम्पादक रहे। कुछ वर्ष आकाशवाणी में नौकरी की तथा तीन वर्ष तक सेना में कैप्टन भी रहे। यायावरी स्वभाव के अज्ञेय ने यूरोप तथा एशिया का भ्रमण किया। सन् 1961 ई० में इनकी नियुक्ति कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में भारतीय संस्कृति के आचार्य पद पर हुई। 'कितनी नावों में कितनी बार' पर ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित हुए। 4 अप्रैल, 1987 को इनका स्वर्गवास हुआ।

हिंदी साहित्य में अज्ञेय की प्रतिष्ठा नई परम्परा का सूत्रपात करने वाले कवि के रूप में है। सन् 1943 में इन्होंने तार सप्तक का प्रकाशन किया, जिससे प्रयोगवादी काव्यधारा का जन्म माना जाता है। इसके बाद अज्ञेय ने तीन और तार सप्तकों का सम्पादन किया। अज्ञेय ने उपन्यास, कहानी, यात्रावर्णन, कविता, निबन्ध आदि अनेक विधाओं में लिखा है। इनकी प्रमुख रचनाओं में 'भग्नदूत' 'चिन्ता', 'इत्यलम्', 'हरी घास पर क्षण भर', 'बावरा अहेरी', 'कितनी नावों में कितनी बार', इन्द्रधनु रौंदे हुए ये', 'आँगन के पार द्वार' (काव्य), शेखर एक जीवनी, 'नदी के द्वीप', 'अपने–अपने अजनबी' (उपन्यास) 'विपथगा', 'परम्परा', 'कोठरी की बात', शरणार्थी', 'जयदोल', ये तेरे प्रतिरूप (कहानी संग्रह) 'अरे यायावर रहेगा याद', 'एक बूँद सहसा उछली' (यात्रावृत्तान्त) 'आत्मनेपद', 'त्रिशंकु', 'नवरंग और कुछ राग', हिंदी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य' (निबंध संग्रह) आदि उल्लेखनीय हैं।

पाठ परिचय –

'सेव और देव' कहानी के माध्यम से अज्ञेय ने जहाँ एक ओर यह स्पष्ट संदेश दिया है कि नैतिक मूल्यों की स्थिति स्वतःस्फूर्त होती है, आरोपित नहीं, वहीं यह भी व्यक्त किया है कि मनुष्य की आस्था उसे और अधिक नैतिक बल देती है। देव मूर्तियों के प्रति विशेष रुचि एवं आस्था रखने वाले प्रोफेसर गजानन अपने व्यक्तित्व से यह सिद्ध कर देते हैं कि आस्था में बहुत बड़ी शक्ति होती है। प्रोफेसर गजानन एक भूखे बालक को 'सेव' के बाग से सेव चुराकर तोड़ने पर डाँटते हैं और स्वयं देव मन्दिर में उपेक्षित पड़ी अनुपम मूर्ति ये सोचकर उठा लेते हैं कि मंदिर में इसका रख-रखाव ठीक नहीं है। वे उसे अपने ओवर कोट में छिपा लेते हैं। लौटते समय वही सेव का बगीचा रास्ते में पड़ता है और वे देखते हैं, वही पहले वाला लड़का सेव की चोरी कर रहा है। यह देखकर वे क्रोधित होते हैं और बच्चे को मारते हैं; किन्तु अचानक उन्हें अनुभव होता है

कि ''इस बच्चे ने तो केवल सेव ही चुराया है, वे तो देवस्थान लूट लाए हैं।'' यही अनुभूति उनके हृदय में मूल्य चेतना और नैतिकता जगा देती है और उलटे पाँव लौटकर देवस्थान जाते हैं। मूर्ति को वापस यथा स्थान रख आते हैं। उन्हें अपने पर ग्लानि होती है। वे यह सिद्ध कर देते हैं कि भारतीय देवी-देवता जिनमें हम आस्था रखते हैं; उनसे हमारे हृदय में छाया अज्ञानान्धकार नष्ट हो जाता है और नैतिक मूल्य तथा सत् की प्रतिष्ठा होती है।

मूल पाठ –

प्रोफेसर गजानन पंडित ने अपना चश्मा पोंछकर फिर आँखों पर लगाया और देखते रह गए। मोटर पर से उतरकर और सामान डाकबंगले में भिजवाकर उन्होंने सोचा था, अभी आराम करने की जरूरत तो है नहीं। ज़रा घूम-घाम कर पहाड़ी सौन्दर्य देख लें, और इसलिए मोटर के अड्डे के धक्कम–धक्के से अलग होकर वे इस पहाड़ी रास्ते पर हो लिए थे। छाया में जब चश्में का काँच ठण्डा हो गया और उस पर उनके गर्म बदन से उठी हुई भाप जमने लगी, तब उन्होंने चश्मा उतारकर रूमाल से मुँह पोंछा, फिर चश्मा साफ करके आँखों पर चढ़ाया और फिर देखते रह गए। पहाड़ी रास्ता आगे एकाएक खुल गया था। चीड़ के वृक्ष समाप्त हो गए। रास्ते को पार करता हुआ एक झरना बह रहा था। उसका जितना अंश समतल भूमि में था, उस पर तो छाया थी, लेकिन जहाँ वह मार्ग के एक ओर नीचे गिरता था, वहाँ प्रपात के फेन पर सूर्य की किरणें भी पड़ रही थीं। ऐसा जान पड़ता था कि अंधकार की कोख में चाँदी का प्रवाह फूट पड़ा है – या प्रकृति-नायिका की कजरारी आँखों से स्नेह गद्‌गद आँसुओं की झड़ी....... और उसके पार एक चट्टान के सहारे एक पहाड़ी राजपूत बाला खड़ी थी, उसकी चौंकी हुई भोली शक्ल से साफ दिखता था कि प्रोफेसर साहब का वहाँ अकस्मात् आ जाना उसे एकदम अनधिकार–प्रवेश मालूम हो रहा है। प्रोफ़ेसर साहब दिल्ली के एक कॉलेज में प्राचीन इतिहास और पुरातत्त्व के अध्यापक हैं। वे उन थोड़े से लोगों में से हैं, जिनका पेशा और मनोरंजन एक ही है – मनोरंजन के लिए भी वे पुरातत्त्व की ओर ही जाते हैं। यहाँ कुल्लू पहाड़ की सुरम्य उपत्यकाओं में भी वे सोचते हुए आए हैं कि यहाँ भारत की प्राचीनतम सभ्यता के अवशेष उन्हें मिलेंगे, और हिन्दू-काल की शिल्प-कला के नमूने और धातु या प्रस्तर या सुधा की मूर्तियाँ और न जाने क्या-क्या .... लेकिन इतना सब होते हुए भी सौन्दर्य के प्रति-जीते-जागते स्पन्दनयुक्त क्षण-भंगुर सौन्दर्य के प्रति - उनकी आँखें अंधी नहीं हैं। बाला को वहाँ खड़ी देखकर उसके पैरों के पास बहते झरने का स्वर सुनते हुए उन्हें पहले तो एक हंसिनी का ख्याल आया, फिर सरस्वती का (यद्यपि बाला के हाथ में वीणा नहीं एक छोटी–सी छड़ी थी) उन्होंने अपने स्वर को यथासम्भव कोमल बनाकर पूछा, ''तुम कहाँ रहती हो ?''

बाला ने उत्तर नहीं दिया, सम्भ्रम दृष्टि से उनकी ओर देखकर जल्दी-जल्दी पहाड़ पर चढ़ने लगी।

प्रोफेसर साहब मुस्करा कर आगे चल दिए। बालिका का भोलापन उन्हें अच्छा-अच्छा लगा। सोचने लगे, 'कितने सीधे-सादे सरल स्वभाव के होते हैं, यहाँ के लोग! प्रकृति की सुखद गोद में खेलते हुए इन्हें न फिक्र है, न खटका है, न लोभ-लालच है। अपने खाने-पीने, ढोर चराने, गाने-बजाने में दिन बिता देते हैं। तभी तो बाहर से आने वाले आदमी को देखकर संकोच होता है। अपने आप में लीन रहने वाले इन भोले प्राणियों को बाहर वालों से क्या सरोकार ?' आगे बढ़ते-बढ़ते प्रोफेसर साहब सोचने लगे, 'ऐसे भले लोग न होते तो प्राचीन सभ्यता के जो अवशेष बचे हैं, ये भी क्या रह जाते ?खुदा-न-खास्ता ये लोग यूरोपियन सभ्यता को सीखे हुए होते तो एक–दूसरे को नोचकर खा जाते, उसकी राख भी न बची रहने देते। लेकिन

यहाँ तो फाहियान के जमाने का ही आदर्श है, सबको अपने काम से मतलब है, दूसरे के काम में दखल देना, दूसरे के मुनाफे की ओर दृष्टि डालना यहाँ महापाप है। लोग ढोर चरने छोड़ देते हैं, शाम को ले जाते हैं। कभी चोरी नहीं, शिकायत नहीं। खेती खड़ी है, कोई पहरेदार नहीं। मजाल क्या कि एक भुट्टा भी चोरी हो जाए। मेरे ख्याल में तो अगर मैं एक चवन्नी यहाँ राह में फेंक दूँ, तो कोई उठाएगा भी नहीं कि न जाने किसकी है और कौन लेने आए ?' रास्ता अब फिर घिर गया था, लेकिन चीड़ के दीर्घकाय वृक्षों से नहीं, अब उसके दोनों ओर थे सेव के छोटे–छोटे लचीले गातवाले पेड़, डार-डार पर लदे हुए फलों के कारण मानो विनय से झुके हुए-क्योंकि जहाँ सार होता है, वहाँ विनय भी अवश्य होता है, क्षुद्र व्यक्ति ही अविनयी हो सकता है - और कभी–कभी हवा से झूम–से जाते हुए। कुल्लू के जगत्-प्रसिद्ध सेवों की प्रशंसा प्रोफेसर साहब ने सुन ही रखी थी, कई बार मँगाकर सेव खाए भी थे, लेकिन आज इस प्रकार पेड़ पर लगे हुए असंख्य फलों को देख कर उनकी तबीयत खुश हो गई। और इससे भी अधिक खुशी हुई इस बात की कि गंध और स्वाद और रस की उस विपुल राशि का न कोई रक्षक कहीं देखने में आता है, न बचाव के लिए बाड़ तक लगाई गई है। पहाड़ी सभ्यता के प्रति उनका आदर-भाव और भी बढ़ गया। क्या शहर में इस तरह बाग रह सकता है ? फलों के कभी पकने की नौबत न आती और न ही तो स्कूल-कॉलेजों के लड़के ही टिड्डी दल की तरह आकर सब साफ कर देते और जितना खाते नहीं, उतना बिगाड़ देते। वहाँ तो कोई बाग लगाए तो एक-एक भोजपुरिये लठैत पहरेदार रखे, और चारों और जेल की-सी दीवार खड़ी करके कि कोई लुक-छिप कर न ले भागे, तब कहीं जाकर चैन से रह सके। और यहाँ - बाग़ की सीमा बनाने के लिए एक तार का जंगला तक नहीं है। पेड़ों के नीचे जो लम्बी-लम्बी घास लग रही है, वही, रास्ते के पास आकर रुक जाती है, वहीं तक बाग की सीमा समझ लो। यहाँ तो.......

प्रोफेसर साहब के पास ही धम्म से कुछ गिरा। उन्होंने चौंककर देखा, उन्हें आते देख एक लड़का पेड़ पर से कूदा है और उसकी अपर्याप्त आड़ में छिपने की कोशिश कर रहा है। उसके हाथ में दो सेव हैं, जिन्हें वह अपने फटे हुए भूरे कोट में किसी तरह छिपा लेना चाहता है।

उसकी झेंपी हुई आँखें और चेहरा साफ कह रहा था कि वह चोरी कर रहा है।

साधारणतया ऐसी दशा में प्रोफेसर साहब किंचित् ग्लानि से उसकी ओर देखते और आगे चल देते, लेकिन इस समय वैसा नहीं कर सके। उन्हें जान पड़ा कि यह लड़का उस सारी प्राचीन आर्य सभ्यता को एकसाथ ही नष्ट-भ्रष्ट किए दे रहा है जो फाहियान के समय से सदियों पहले से अक्षुण्ण बनी चली आई है। वे लपककर उस लड़के के पास पहुँचे और बोले, 'क्यों बे बदमाश, चोरी कर रहा है ? शर्म नहीं आती दूसरे का माल खाते हुए ?'' लड़का घबराया-सा खड़ा रहा, बोल नहीं सका। प्रोफेसर साहब और भड़क उठे। एक तमाचा उसके मुँह पर जमाया, सेव छीनकर घास में फेंक दिए जहाँ वे ओझल हो गए और फिर गर्दन पकड़कर लड़के को धकेलते हुए रास्ते की ओर ले आए।

''पाजी कहीं का! चोरी करता है ?तेरे जैसों के कारण तो पहाड़ी लोग बदनाम हो गए हैं। क्यों चुराये थे सेव ? यहाँ तो पैसे के दो मिलते होंगे, एक पैसे के खरीद लेता। ईमान क्यों बिगाड़ता है ?''

रास्ते पर लड़के को उन्होंने छोड़ दिया। वह वहीं खड़ा आँसू भरी आँखों से उधर देखता रहा जहाँ घास में उसके तोड़े हुए सेव गिर कर आँखों से ओझल हो गए थे।

प्रोफेसर साहब आगे बढ़ते हुए सोच रहे थे, खड़ा देख रहा होगा कि चोरी भी की, तो फल नहीं मिला। बहुत अच्छा हुआ। सेवों का सड़ जाना अच्छा, चोर को मिलना अच्छा नहीं। सड़े, चोर को क्या हक है ?

प्रोफेसर साहब एक गाँव के पास आ रुके। अन्दाज से उन्होंने जाना कि यह मनाली गाँव होगा और उन्हें याद आया कि यहाँ पर एक दर्शनीय प्राचीन मन्दिर है। गाँव के लोगों से पता पूछते हुए वे मनु के मन्दिर पर पहुँच ही गए। मन्दिर छोटा था, सुन्दर भी नहीं था, लेकिन संसार-भर में मनु का एकमात्र मन्दिर होने के नाते वह अपना महत्त्व रखता था। प्रोफेसर साहब कितनी ही देर तक एकटक उसकी ओर देखते रहे, यहाँ तक कि देहरी पर बैठे हुए बूढ़े पुजारी का ध्यान भी उनकी ओर आकृष्ट हो गया, आने-जाने वाले तो खैर देखते ही थे।

प्रोफेसर साहब ने गद्‌गद स्वर में पूछा, ''आसपास और भी कोई मन्दिर है ?''

पास खड़े एक आदमी ने कहा,''नहीं बाबूजी, यहाँ कहाँ मन्दिर है ?'' ''यहाँ मन्दिर नहीं?'' अरे भले आदमी, यहाँ तो सैकड़ों मन्दिर होने चाहिए। यहाँ पर.......

''बाबूजी, यहाँ तो लोग मन्दिर देखने आते नहीं। कभी-कभी कोई आता है तो यह मनूरिखि का मन्दिर देख जाता है, बस, और तो हम जानते नहीं।''

पुजारी ने खाँसते हुए पूछा, ''कौन-सा मन्दिर देखिएगा, बाबू ?''

''कोई और मन्दिर हो, आस-पास के सब मन्दिर–मूर्तियाँ मैं देखना चाहता हूँ।''

पुजारी ने थोड़ी देर सोचकर कहा, ''और तो कोई नहीं, उस चोटी के ऊपर जंगल में एक देवी का स्थान है। वहाँ पहले कभी एक किला भी था, जिसके अन्दर देवी के थान में पूजा होती थी, पर अब तो उसके कुछ पत्थर ही पड़े हैं। वहाँ कोई जाता नहीं, अब उसमें भूत बसते हैं।''

प्रोफेसर साहब कुछ मुस्कराए, लेकिन बोले, ''कैसे भूत ?''

''कहते है कि पुराने राजाओं के भूत रहते हैं। वे राजा बड़े -प्रतापी थे।''

''अरे, उन भूतों से मेरी दोस्ती है!'' कहकर प्रोफेसर साहब ने रास्ता पूछा और क्षण-भर सोचकर पहाड़ पर चढ़ने लगे। पुजारी ने 'पास ही' बताया था, तो मील-भर से अधिक नहीं होगा, और अभी तीन बजे हैं, शाम होने तक मजे में बंगले पर पहुँच जाऊँगा।

जंगल का रूप बदलने लगा। बड़े-बड़े पेड़ समाप्त हो गए, अब छोटी–छोटी झाड़ियाँ ही दीख पड़ने लगीं। यह पड़ाव का वह मुख था, जो हवा के थपेड़ों से सदा पिटता रहता था – जाड़ों में तो बर्फ की चोटें यहाँ लगे हुए पेड़-पौधे को कुचल डालतीं। प्रोफेसर साहब की समझ में आने लगा कि यह ऊँचा शिखर किले के लिए बहुत उपयुक्त जगह है और यह भी वे जान गए कि यहाँ बना हुआ किला उजड़ कर कितनी जल्दी निरवशेष हो जाएगा।

झाड़ियाँ भी छोटी होती चलीं। घास की बजाय अब पथरीली जमीन आई, जिसमें किसी तरफ कोई बनी हुई पगडंडी नहीं थी, जिधर चले जाओ वही मार्ग। कहीं-कहीं लाल पत्थर के भी कुछ टुकड़े दीख जाते थे, जो शायद क़िले की इमारत में कहीं लगे होंगे, नही ंतो उधर लाल पत्थर नहीं होता। कहीं-कहीं पत्थर और मिट्टी के स्तूपाकार टीले की आड़ में कोई गाढ़े रंग की पत्तों वाली झाड़ी लगी हुई दीख जाती, तो वह

आसपास के उजाड़ सूनेपन को और भी गहरा कर देती। साँझ के धुँधलके में ऐसी झाड़ी को देखकर स्तूप में धूम्रवत् निकलते हुए प्रेत की कल्पना होना कोई असम्भव बात नहीं थी।

एक ऐसे ही स्तूप की आड़ में प्रोफेसर साहब ने देखा, एक गड्ढे में कीच भरी है जिसकी नमी से पोसे जाते हुए दो वृक्ष खड़े हैं और उनके नीचे पत्थर का एक छोटा-सा मन्दिर है, जिसका द्वार बन्द पड़ा है।

प्रोफेसर साहब ने कुण्डे में अटकी हुई कील निकाली तो द्वार खुलने की बजाय आगे गिर पड़ा– उसके कब्जे उखड़ गए थे। उन्होंने किवाड़ को उठाकर एक ओर धर दिया, थोड़ी देर पीछे हटकर खड़े रहे कि बन्द और सील के कारण बदबूदार हवा बाहर निकल जाए, फिर भीतर झाँकने लगे।

मन्दिर की बुरी हालत थी। भीतर न जाने कब बलि-पशुओं के सींग - बकरे के और हिरन के - पड़े हुए थे, जो सूखकर धूल-रंग के हो गए थे - उन पर कीड़े भी चल रहे थे। फर्श के पत्थरों के जोड़ों में काई उग आई थी। उन सींगों के ढेर से परे देवी के काले पत्थर की मूर्ति एक ओर लुढ़क गई थी। पास में पड़ी गणेश की पीतल की मूर्ति जंग से विकृत हो रही थी। केवल दूसरी ओर खड़ा श्वेत पत्थर का शिवलिंग अब भी साफ़, चिकना और सधे हुए सिपाही की तरह शान्त खड़ा था। आस-पास की जर्जर अवस्था में उसके उस दर्पोन्नत भाव से ऐसा जान पड़ता था, मानों क्रुद्ध होकर कह रहा हो, ''मेरी इस निभृत अन्तःशाला में आकर मेरे कुटुम्ब की शांति भंग करने वाले तुम कौन ?''

दो-एक मिनट प्रोफेसर साहब देहरी पर खड़े-खड़े ही इस दृश्य को देखते रहे। फिर उन्होंने बाँह पर टंगा हुआ अपना ओवरकोट नीचे रखा। एक बार चारों ओर देखकर निर्जन पाकर भी जूते खोल देना ही उचित समझा और भीतर जाकर देवी की मूर्ति उठाकर देखने लगे।

मूर्ति अत्यन्त सुन्दर थी। पाँच सौ वर्ष से कम पुरानी नहीं थी। इस लम्बी अवधि का उस पर ज़रा भी प्रभाव नहीं पड़ा था - या पड़ा था तो पत्थर को और चिकना करके मूर्ति को सुन्दर ही बना गया था। मूर्ति कहीं बिकती तो तीन-चार हज़ार से कम की न होती- किसी अच्छे पारखी के पास हो तो दस हजार भी कुछ अधिक मूल्य न होता और यह यहाँ उपेक्षित हालत में पड़ी है। न जाने कब से कोई इस मन्दिर तक आया भी नहीं है।

प्रोफेसर साहब ने मूर्ति ठीक स्थान पर सीधी करके रख दी और फिर देहरी पर आकर उसका सौन्दर्य देखने लगे।

पाँच सौ वर्ष! पाँच सौ वर्ष से यह यहीं पड़ी होगी ? न जाने कितनी पूजा इस ने पाई होगी, कितनी बलियों के ताज़े, गर्म, पूत रक्त से स्नान करके अपना दैवी सौन्दर्य निखारा होगा, और अब कितने बरसों से इन रेंगते हुए कीड़ों की लम्बी-लम्बी जिज्ञासु मूँछों की ग्लानिजनक गुद्‌गुदाहट सह रही होगी .... उफ़, देवत्व की कितनी उपेक्षा! मानव नश्वर है, यह मर जाए और उसकी अस्थियों पर कीड़े रेंगें, यह समझ में आता है लेकिन देवता......... पत्थर जड़ है; उसका महत्त्व कुछ नहीं! लेकिन मूर्ति तो देवता की ही है, देवत्व की चिरन्तनता की निशानी तो है। एक भावना है, पर भावना आदरणीय है। क्या यह मूर्ति यहीं पड़े रहने के काबिल है ? इन कीड़ों के लिए जिनके पास श्रद्धा को दिल नहीं, पूजने को हाथ नहीं, देखने को आँखें नहीं, छूने को त्वचा नहीं, टटोलने को ये हिलती हुई गन्दी मूँछे हैं .... यह मूर्ति कहीं ठिकाने से होती।

न जाने क्यों प्रोफेसर साहब ने एकाएक मन्दिर-द्वार से हटकर चारों ओर घूम कर देखा, फिर

देखा। न जाने क्यों आस-पास निर्जन पाकर तसल्ली की स्वांस ली और फिर वहाँ आ खड़े हुए।

मूर्ति गणेश की भी बुरी नहीं, लेकिन वह उतनी नहीं, न इतनी सुन्दर शैली पर निर्मित है। पीतल की मूर्ति में कभी वह बात आ नहीं सकती जो पत्थर में होती है। देवी की मूर्ति को देखते-देखते प्रोफेसर साहब के हृदय की स्पन्दन-गति तीव्र होने लगी– इतनी सुन्दर जो थी वह। वे फिर आगे बढ़कर उसे उठाने को हुए, लेकिन फिर उन्होंने बाहर झाँककर देखा, पर वहाँ कोई नहीं था, कोई आता ही नहीं उस बिचारे उजड़े हुए मन्दिर के पास - किसे परवाह थी निर्जन को अपनी दीप्ति से जगमग करती हुई उस देवी की। देवी के प्रति दया और सहानुभूति से गद्‌गद होकर प्रोफेसर साहब फिर भीतर आए। लपककर मूर्ति को उठाया और अपने धड़कते हुए हृदय को शान्त करने की कोशिश करते हुए एकटक उसे देखने लगे।

दिल इतना धड़क क्यों रहा है! प्रोफेसर साहब को ऐसा लगा जैसे वे डर रहे हैं। फिर उन्हें इस विचार पर हँसी-सी आ गई। डर किससे रहा हूँ मैं ? प्रेतों से ? मैं भी क्या यहाँ के लोगों की तरह अंधविश्वासी हूँ जो प्रेतों को मानूँगा ? कविता के लिहाज से भले ही मुझे सोचना अच्छा लगे कि यहाँ प्रेत बसते हैं, और रात में जब अँधेरा हो जाता है तब इस मन्दिर में देवी के आस-पास नाचते हुए ..... देवी है, शिव है, इसके गण भी तो होने ही चाहिए। रात को मूर्तियों को घेर-घेर कर नाचते होंगे और इन न जाने कब के बलि-पशुओं के भस्मीभूत सींगों से प्रेतोचित प्रसाद पाते होंगे! और दिन में मन्दिर की कन्दराओं में, दरारों में छिपकर अपनी उपास्य मूर्तियों की रक्षा करते होंगे, देखते होंगे कि कौन आता है, क्या करता है......

उन्होंने फिर मूर्ति को रख दिया और लौटकर देखा। उन्हें एकाएक लगा जैसे उस अखण्ड नीरवता में कोई छाया-सी आकर उनके पीछे भागकर कहीं छिप गई है– प्रेत! वे फिर रुकती–सी हँसी–हँसकर बाहर निकल आए। इस घोर निर्जन ने मेरे शहर के शोर से उलझे स्नायुओं को और उलझा दिया है। इसी नतीजे पर वे पहुँचे और फिर मन्दिर की ओर देखने लगे।

दिन ढल रहा था। मन्दिर की लम्बी पड़ती हुई छाया को देखकर प्रोफेसर साहब को ऐसा लगा, मानो वह दूर हटती-हटती भी मन्दिर से अलग होना नहीं चाहती, उससे चिपटी हुई है, मानो उसकी रक्षा करना चाहती हो, मानो यह मन्दिर और उसकी मूर्तियाँ उस छाया की गोद के शिशु हों, प्रोफेसर साहब का मन भटकने लगा।

इजिप्ट के पिरामिड भी इतने ही उपेक्षित पड़े थे। यह मन्दिर आकार में बहुत छोटा है, वे विराट थे, लेकिन उपेक्षा तो यही थी। उनमें भी न जाने क्या-क्या बातें फैला रखी थीं, भूत प्रेतों की। अंत में यूरोप के पुरातत्त्वविद्‌ साहस करके वहाँ गए, उन्होंने उनमें प्रवेश किया, और अब संसार के बड़े संग्रहालयों में वे खज़ाने पड़े हैं और महत्त्व के अनुरूप सम्मान पाते हैं। फिलोडेल्फिया के अजायब–घर में तूतां खामेन की वह स्वर्णमूर्ति – उस नौ सेर खरे सोने का मूल्य तीस हज़ार रुपये होगा – फिर प्राचीनता का मूल्य अलग, और उसमें जड़े हुए हीरे-जवाहरात का अलग- कुल मिलाकर लाखों रुपये की चीज़ वह....

वे फिर भीतर गए। मूर्ति उठाई और रखकर बाहर आ गए। उन्होंने फिर सब ओर देखा। कोई नहीं था। सूर्य भी एक छोटे-से बादल के पीछे छिप गया था।

एकाएक उनकी घबराहट का कारण स्पष्ट हो गया। कुछ ठंडी-सी जानकर उन्होंने जल्दी से ओवरकोट पहना और फिर भीतर चले गए।

मूर्ति के उपयुक्त यह स्थान कदापि नहीं है। मन्दिर है, पर जहाँ पूजा ही नहीं होती वह कैसा मन्दिर ? और गाँव वाले परवाह कब करते हैं। यहाँ मन्दिर भी गिर जाए तो शायद महीनों उन्हें पता ही न लगे– कभी किसी भटकी हुई भेड़-बकरी की खोज में आया हुआ गड़रिया आकर देखे तो देखे। यहाँ मूर्ति को पड़ा रहने देना पाप है।

इस निश्चय पर आकर भी उन्होंने एक बार बाहर आकर तसल्ली की कि कहीं कोई देख तो नहीं रहा है, तब लौटकर मूर्ति उठाकर जल्दी से कोट के भीतर छिपाई, किवाड़ को यथास्थान खड़ा किया, बूट एक हाथ में उठाए और बिना लौट कर देखे भागते हुए उतरने लगे।

जब देवी का स्थान और उसके ऊपर खड़े दोनों पेड़ों की फुनगी तक आँखों की ओट हो गई, तब उन्होंने रुककर बूट पहने और फिर धीरे–धीरे उतरते हुए ऐसा मार्ग खोजने लगे जिससे गाँव में से होकर न जाना पड़े। शिखर के दूसरे मुख से ही वे उतर सके।

गाँव मील-भर पीछे छूट गया था। सेवों के बगीचे फिर शुरू हो गए थे। कभी कोई मधु पीकर अघाया हुआ मोटा-सा काला भौंरा प्रोफेसर साहब के कोट से टकरा जाता था, कभी कोई तितली आकर रास्ता काट जाती थी। सूर्य की धूप लाल हो गई थी– ये सब अपना-अपना ठिकाना खोज रहे थे। प्रोफेसर साहब भी अपने ठिकाने की ओर जा रहे थे। उनका हृदय आह्लाद से भर रहा था। उनका पहला ही दिन कितना सफल हुआ था! कितना सौन्दर्य उन्होंने देखा था– और कितना सौन्दर्य, बहुमूल्य सौन्दर्य, उन्होंने पाया था! कुल्लू का अनिर्वचनीय सौन्दर्य! वास्तव में वह देवताओं का अंचल है .....

उस समय प्रोफेसर साहब के भीतर जो कुल्लू-प्रेम का ही नहीं, मानव-प्रेम का, संसार-भर की शुभेच्छा का रस उमड़ रहा था, उसकी बराबरी कुल्लू के रस-भरे सेव भी क्या करते! प्रोफेसर साहब की स्नेह उंड़ेलती हुई दृष्टि के नीचे वे मानो और पककर रस से भर जाते थे, उनका रंग कुछ और लाल हो जाता था। कितने रस-गद्गद हो रहे थे प्रोफेसर साहब!

सेव के बाग में फिर कहीं धमाका हुआ। प्रोफेसर साहब ने देखा, एक लड़का उन्हें देखकर शाख से कूदा है, उसके कूदने के धक्के से फलों की लदी हुई शाखा भी टूटकर आ गिरी है।

प्रोफेसर साहब ने रौब के स्वर से कहा, ''क्या कर रहा है ?''

लड़के ने सहम कर उनकी तरफ़ देखा– वही लड़का था! हाथ का थोड़ा-सा खाया हुआ सेब वह कोट के गुलूबन्द के भीतर छिपा रहा था।

प्रोफेसर साहब के तन में आग लग गई। लपककर बालक के कोट का गला उन्होंने पकड़ा, झटका देकर सेव बाहर गिराया, दो तमाचे उसके मुँह पर लगाते हुए कहा, ''बदमाश, फिर चोरी करता है! अभी मैं डाँट के गया था, बेशर्म को शर्म भी नहीं आई।''

उन्होंने लड़के को छाती में धक्का दिया। वह लड़खड़ा कर कुछ दूर जा पड़ा। गिरने को हुआ, संभल गया, फिर एक हाथ से कोट को वहीं से थामकर जहाँ प्रोफेसर ने धक्का दिया था, एक दर्द–भरी चीख मारकर रो उठा।

चीख सुनकर प्रोफेसर साहब को कुछ शान्ति हुई। कुछ आनन्द–सा हुआ। विद्रूप से उन्होंने कहा, ''क्यों, दुखती है छाती ? और छिपाओं सेव वहाँ पर!''

बात में भरे हुए तिरस्कार को और तीखा बनने के लिए उनके हाथ ने उनका अनुकरण किया, उठकर तेज़ी से प्रोफेसर साहब के ओवरकोट के कॉलर में घुसा।

एकाएक प्रोफेसर साहब पर मानो गाज गिरी। एक चौंधिया देने वाला आलोक क्षण-भर उनके आगे जलकर एक वाक्य लिख गया, 'इसने तो सेव चुराया है, तुम देवस्थान लूट लाए!'

सहमें हुए, स्तम्भित-से प्रोफेसर साहब क्षण–भर खड़े रहे, फिर धीरे-धीरे उलटे–पाँव गाँव की ओर चल पड़े।

तर्क उन्हें सुझाने लगा कि बेवकूफी है, उनकी दलील बिलकुल गलत है, तुलना आधारहीन है,' लेकिन वे न जाने कैसे इस सब बुद्धि की प्रेरणा के प्रति बहरे हो गए थे। जैसे कोलाहल बढ़ने लगा, उसे रोक रखने के लिए उनकी गति भी तीव्रतर होती गई। जब वे आँधी की तरह गाँव में से गुजरे, तब घर जाता हुआ प्रत्येक व्यक्ति कुछ विस्मय से उनकी ओर देखता और उन्हें लगता कि वे उनकी छाती की ओर ही देख रहे हैं, जैसे उस काले ओवरकोट में छिपी हुई देवमूर्ति की ओर उसके पीछे प्रोफेसर साहब के दिल में बसे हुए पाप को, वे खूब अच्छी तरह जानते हैं।

अँधेरा होते-होते वे मन्दिर पर पहुँचे। किवाड़ एक ओर पटककर उन्होंने मूर्ति को यथास्थान रखा। लौटकर चलने लगे, तो आस–पास के वृक्ष अँधेरे में भयानक हो गये थे। सुनसान ने उन्हें फिर सुझाया कि वे एक निधि को नष्ट कर रहे हैं, लेकिन जाने क्यों उनके मन में शान्ति उमड़ आई। उन्हें लगा कि दुनिया बहुत ठीक है, बहुत अच्छी है।

शब्दार्थ–

सुरम्य – रमणीय/ उपत्यकाओं – घाटियों/ निरवशेश – नश्ट प्रायः/ संभ्रम – आश्चर्य मिश्रित – कौतुहल भाव सहित / स्तूपाकार – मिट्टी, ईंट आदि से बना ढूह के समान/ चिरन्तनता – शाश्वतता/ स्पन्दन गति – धड़कन/ फाह्यान – एक चीनी यात्री/ अक्षुण्ण – जो नष्ट न हो/ निभृत – एकान्त निर्जन/ अनिर्वचनीय – अवर्णनीय/ पूत रक्त – पवित्र रक्त/ प्रपात – झरना/ अकस्मात – अचानक/ क्षण–भंगुर – शीघ्र नष्ट होने वाला/ दीर्घकाय – विशाल वृक्ष/ ढोर – पशु/ विपुल राशि – अत्यधिक संख्या (ढेर)/ किंचित ग्लानि – कुछ घृणा से/ जर्जर – नष्ट प्रायः/ कुटुम्ब – परिवार/ देवत्व – ईश्वरत्व/ निर्जन – एकान्त/ दीप्ति – प्रकाश/ कन्दराओं – गुफाओं/ उपास्य – उपासना करने योग्य/ नीरवता – शान्ति/ अनुरूप – रूप के अनुसार/ अघाया – तृप्त/ आह्लाद – प्रसन्नता/ शाखा – डाल/ आलोक – प्रकाश/ स्तम्भित – जड़वत्/ निधि – खजाना।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. लेखक के अनुसार कौन लोग अविनयी हो सकते हैं ?

(क) क्षुद्र व्यक्ति (ख) दुष्ट व्यक्ति

(ग) शिक्षित व्यक्ति (घ) अशिक्षित व्यक्ति। ( )

2. प्रोफेसर गजानन किस विशय के प्रोफसर हैं ?

(क) इतिहास (ख) प्राचीन इतिहास और पुरातत्व

(ग) भूगोल (घ) प्राचीनतम सभ्यता। ( )

3. अज्ञेय ने कितने तार सप्तकों का सम्पादन किया ?

(क) एक (ख) दो

(ग) चार (घ) तीन ( )

4. लेखक किस की उपेक्षा पर दुःख व्यक्त करता है ?

(क) मानवत्व (ख)देवत्व

(ग) दानवत्व (घ) राक्षसत्व ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. प्रोफसर गजानन कहाँ घूमने जाते हैं और क्यों ?
2. मंदिर में उपेक्षित देवी की मूर्ति देखकर वे क्या सोचते हैं ?
3. अज्ञेय पहाड़ी बालक को चाँटे क्यों लगाते हैं ?
4. अज्ञेय का पूरा नाम बताते हुए उनके प्रसिद्ध उपन्यासों का नाम बताइए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. प्रोफसर गजानन देवी की मूर्ति उठाकर ओवर कोट में रखकर चलते समय क्या सोचते हैं ?
2. सेब तोडने वाले लड़के को पीटने के बाद उनके मन में क्या विचार आते हैं? अपने शब्दों में लिखिए।
3. राजपूती बाला को देखकर अज्ञेय के मन में पहाड़ी ग्रामवासियों के विशय में क्या विचार उत्पन्न हुए ?
4. लोभ–लालच कुछ समय के लिए मन को विचलित कर सकते हैं, परन्तु अन्त में नैतिक भाव ही विजयी होते हैं। संकलित कहानी के संदर्भ में स्पष्ट कीजिए।

निबंधात्मक प्रश्न–

1. अज्ञेय की कहानी कला की विशेशताओं पर प्रकाश डालिए।
2. 'सेव और देव' कहानी की मूल संवेदना अपने शब्दों में लिखिए।
3. प्रोफेसर गजानन की चारित्रिक विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।
4. ''इसने तो सेब ही चुराया है, तुम देवस्थान लूट आये।'' इस कथन में लेखक की मनःस्थिति पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
5. पाठ में आए निम्नलिखित गद्यांशों की सप्रंसग व्याख्या कीजिए –

(क) ''ऐसा जान पड़ता था................................ मालूम हो रहा हैं।''

(ख)''वे उन थोड़े से लोगों.................................अंधी नहीं हैं।''

(ग)''रास्ता अब फिर घिर..झूम से जाते हुए।''

(घ)''तर्क उन्हें सुझाने लगा...................................तीव्रतर होती गयी।''

(ङ)''देवत्व की कितनी उपेक्षा!...................................... कहीं ठिकाने से होती।''

•••